बाबा साहेब का शिक्षा के क्षेत्रा में योगदान– एक विमर्श

शिक्षा किसी भी समाज, समुदाय व देश के सामाजिक परिवर्तन का आधर है।

बिना शिक्षा किसी भी समाज–समुदाय व देश की प्रगति असंभव है। विशेष रूप से दलितों, पिछड़ों व वंचित वर्गों की सामाजिक मुक्ति व आर्थिक विकास का रास्ता शिक्षा से होकर ही निकलता है। वर्तमान में अगर दलितों, वंचितों को आगे बढ़ना

है तो इसके लिए आवश्यक है कि वे शैक्षिक समानता प्राप्त करें क्योंकि जीवन के प्रत्येक क्षेत्रा जैसे सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक समानता प्राप्त करने का रास्ता शैक्षिक समानता की प्राप्ति से होकर ही निकलता है।

भारतीय समाज परम्परागत रूप से जातीय व्यवस्था पर आधरित हैं जो कि चार वर्णों पर आधरित है– जिसमें ब्राह्मण प्रथम स्थान पर दूसरे स्थान पर क्षत्रिाय, तीसरे स्थान पर वैश्य तथा श्रेणी के सबसे निम्न स्तर पर शूद्रों को रखा गया है। इ जो कि असमानता के सि(ांत को लागू करने का सबसे महत्त्वपूर्ण तरीका है। स वर्ण व्यवस्था में शूद्रों को सबसे निम्न हेय दृष्टि से देखा गया है जिन्हें न तो किसी प्रकार का अध्किार प्राप्त था और ना ही स्वतंत्राता। और इन अध्किारों को प्राप्त करने का एकमात्रा उपाय है ज्ञान प्राप्त करना और ज्ञान प्राप्ति का मार्ग शिक्षा से होकर हीगुजरता है। इस संदर्भ में बाबा साहेब का मानना है कि जब तक मन को स्वतंत्राताका उपयोग करने की शिक्षा न दी जाए तब तक स्वतंत्राता का कोई मूल्य ही नहीं रहता। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए शिक्षा प्राप्त करने का मनुष्य का अध्किार उसकी स्वतंत्राता के लिए मूलभूत अध्किार बन जाता है। मनुष्य को

1

ज्ञान से वंचित रखकर आप उसे अनिवार्य रूप से उन लोगों का गुलाम बना देंगे, उ जो उससे अधिक सौभाग्यशाली हैं। ... ज्ञान से वंचित रखने का मतलब है, स शक्ति को नकारना है, जिससे स्वतंत्राता का महान् उद्देश्यों के लिए उपयोग किया जाता है। एक अज्ञानी मनुष्य स्वतंत्रा हो सकता है। परंतु वह अपनी स्वतंत्राता का उपयोग नहीं कर सकता, जिससे कि वह अपनी प्रसन्नता के प्रति आशवस्त हो सके।[1] लेकिन यह भी सत्य है कि जातीय व्यवस्था पर आधरित भारतीय समाज में दलि त वर्ग इतिहास से लेकर वर्तमान तक शिक्षा के क्षेत्रा में हाशिए पर रहा है। शिक्षा एक ऐसा औजार है जिसके जरिए समाज में राजनीतिक, सामाजिक व आर्थिक समानता तथा स्वतंत्राता लाई जा सकती है। परन्तु यह हमारे समाज का दुर्भाग्य है कि हमारे देश में शिक्षा महज कुछ वर्गों तक ही सिमट कर रह जाती है और इसका अहम् कारण भारतीय समाज का परम्परागत जातीय स्वरूप है जिसमें कुछ खास वर्गों को कमोवेश सभी अधिकार प्राप्त हैं जबकि निम्न वर्ग को हाशिए पर धकेल दिया गया है। बंबई प्रेसिडेंसी में दलित वर्गों की शिक्षा की स्थिति पर त चर्चा करते हुए बाबा साहेब कहते हैं कि "बंबई सरकार कापफी लंबे अर्से क लोक शिक्षा के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण कार्य को अपने हाथ में लेने से इंकार करती रही है और जब उसने लिया, तो जानबूझकर ऐसी व्यवस्था की, कि शिक्षा का लाभ केवल कुछ खास वर्गों को मिला और आम जनता उससे वंचित रह गई।"[2] बाबा साहेब ने 1855 से पूर्व तक दलितों की स्थिति पर टिप्पणी करते हुए आयोग के समक्ष इस प्रश्न कि 1855 तक का उत्तर रखा सरकार की दलितों की शिक्षा

[1] सम्पूर्ण वाघ्मय खण्ड–6, पृ. 60

[2] सम्पूर्ण वाघ्मय खण्ड–4, पृ. 44–45

के लिए क्या नीति रही। इस संदर्भ में वे कहते हैं कि ''1854 के बाद ही इस सरकार ने वर्ग–शिक्षण से हटकर जन–शिक्षण का समर्थन किया। लेकिन जन शिक्षा के प्रसार में सरकार ने कोई खास रूचि नहीं दिखाई। उसने केवल कुछ प्रस्ताव पास कर दिए। वित्तीय सहायता पर भी सरकार ने भारी कंजूसी दिखाई है। जो सरकार सदा कराधन के पक्ष में रही हो वही सरकार उस प्रस्ताव को कैसे नकार सकती है जिसमें कराधन का जिक्र भी हो। सुधरों के कारण शायद ही कोई पफर्क पड़ा हो। प्रेसीडेंसी में अनिवार्य प्राइमरी शिक्षा अधिनियम पास होने के अलावा जन शिक्षा की दिशा में कोई खास प्रगति नहीं हुई। इसके विपरीत स्थानीय प्राध्किारियों को शिक्षा का कार्य सौंपे जाने से इसका स्तर गिरा है। इसकी व्यवस्था ऐसे लोगों के हाथों में चली गई है, जो अपेक्षाकृत या तो दिलचस्पी नहीं लेते या इस क्षेत्रा में अनभिज्ञ हैं। ऐसे लोग मुश्किल से शिक्षा सुधर में रूचि लेते हैं।जहां तक दलितों की शिक्षा का प्रश्न है, सच्चाई तो यह है कि उन्हें इससे वंचित रखा जा रहा है। उनकी शिक्षा के मार्ग में अस्पृश्यता एक ऐसी दीवार है जिसे लांघा नहीं जा सकता। और इसके आगे सरकार भी झुक गई है।[3]

बाबा साहेब ने बम्बई प्रेसीडेंसी में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' में दलित वर्गो की शिक्षा की स्थिति पर विचार करते हुए अनेक मुद्दों को उठाया। पेश्वा सरकार के दौरान दलित जातियां शिक्षा से पूरी तरह वंचित थीं। राज्य शिक्षा के किसी भी विचार में शामिल नहीं थे। इसका कारण था कि पेशवा राज्य मनु के सि(ांतों पर आधरित ध्र्म–तंत्रा–राज्य था। उसके अनुसार शूद्रों व अतिशूद्रों को

[3] वही, पृ. 45

शिक्षा का कोई अध्किार नहीं था। स्थानीय लोगों में शिक्षा का प्रसार करने के प्रश्न पर अंग्रेज लंबे समय तक चुप्पी साध्े रहे। हालांकि भारत के प्रशासन के उच्चाधिकारी भारत के लोगों में ज्ञान के प्रसार के अपने नैतिक दायित्व और प्रशासनिक आवश्यकता से पूरी तरह बेखबर नहीं थे, पिफर भी 1813 तक सार्वजनिक रूप से सरकार के दायित्व के संबंध् में कोई घोषणा नहीं की गई थी। 1813 में संविध् 53, जार्ज प्प्प अध्याय 153 की धरा 43 में संसद ने निर्णय दिया कि ''भारत के राजस्व में से प्रति वर्ष एक लाख रुपये से अनाध्कि अलग रखा जाऐगा ताकि भारत के साहित्य में आवश्यक सुधर करने, यहां के विद्वानों को प्रोत्साहन देने तथा भारत में राज्य क्षेत्रों के निवासियों में विज्ञान की शिक्षा का प्रसार करने में व्यय किया जा सके।''[4] परन्तु इस संविध् की व्यवस्था के अन्तर्गत कोई सुसंगत, सुदृढ़ और सुसंगठित प्रयास 1823 तक नहीं हुआ। क्योंकि कोर्ट ऑपफ डायरेक्टर्स ने 3 जून 1814 के पत्रा में 1813 की संविध् की धरा 43 के कार्यान्वयन के तरीके को निर्धरित करते हुए गवर्नर जनरल इन काउंसिल को निर्देश दिया था कि हिन्दुओं में संस्कृत की शिक्षा को बढ़ावा देने से उन उद्देश्यों की पूर्ति हो जाऐगी जो संसद चाहती थी। लेकिन जब स्थानीय लोगों में शिक्षा को एक सुदृढ़ और सुसंगठित आधर प्रदान करने हेतु प्रयास किए गए तो दलित जातियों को निराशा ही हाथ लगी क्योंकि अंग्रेजी सरकार ने जानबूझकर यह निर्णय दिया कि शिक्षा केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित रखी जाए। शिक्षा को उच्च वर्गों तक सीमित रखने के औचित्य का पता कोर्ट ऑपफ डायरेक्टस के उस पत्रा से भी

---

[4] वहीं, पृ. 125–126

पता चलता है जो उसने 1830 में मद्रास को लिखा जिसमें कहा गया कि शिक्षा में सुधर से लोगों का मनोबल और आध्यात्मिक स्तर उठाने के सबसे प्रभावशाली उपाय वे हैं जिसका संबंध उच्च वर्ग के व्यक्तियों की शिक्षा से होता है। उन लोगों के पास समय होता है और अपने देशवासियों के मन पर उनका सहज प्रभाव होता है। इन वर्गों का शिक्षा स्तर अंततः उठाकर अआप लाभदायक परिवर्तन ला सकेंगे, जि अपेक्षाकृत उसके से आप अध्कि संख्या वाले वर्ग पर सीध प्रभाव डालकर पा लाने की आशा कर सकते हैं। इसके अलावा हम चाहते हैं कि हमारे स सुरूचिपूर्ण स्वभाव और योग्यता से सम्पन्न मूल निवासियों का एक ऐसा समूह हो, जो अपने देश के सिविल प्रशासन में और अध्कि हिस्सा ले सकें तथा उसमें उच्च पद पा सके। बंबई में शिक्षा संबंधी आंकड़ों के आधर पर यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रेसीडेंसी की सरकार स्कूल जाने योग्य हर प्रत्येक 69 बच्चों में से एक से अध्कि बच्चों को शिक्षा प्राप्ति का अवसर नहीं दे सकी। इसके अलावा यह भी स्वीकार किया गया कि वर्नाक्यूलर स्कूल में दी गई शिक्षा अच्छे स्तर से कोसों दूर है। जब जन शिक्षा का कोई साध्न ही नहीं है त6ब ऐसे में बच्चों को शिक्षित करने का प्रश्न ही निरर्थक है ;पैरा–14द्ध। बाबा साहेब कोर्ट ऑपफ डायरेक्टर्स द्वारा दिए गए आदेशों पर विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि बोर्ड ने बहुध प्रयास वर्ग तक सीमित रखा किया है, अर्थात् उच्च शिक्षा को कठोरता से उस ध्नी जाए जो उसका खर्च उठा सकता है और असाधरण बुि(मता वाले नौजवानों तक भी। लेकिन अकादमिक शिक्षा को भारत के सम्पन्न वर्गों के छात्रों अथवा पैसे पर आधरित नहीं किया जा सकता। बाबा साहेब ने हिन्दुओं के सामाजिक पूर्वाग्रहों पर

प्रहार करते हुए कहते हैं कि यदि दलितों का बंबई में कोई वर्ग बनाए जाए तो बोर्ड की सेवा में रत प्रोफेसरों तथा मास्टरों के मार्गदर्शन में उन्हें समाज में किसी से भी बेहतर बुद्धिमता वाले व्यक्तियों में परिणत किया जा सकता है। तब वे जो योग्यता प्राप्त करेंगे, उसके बल पर वे देशज प्रतिभा के लिए खुले सर्वोच्च पदों तक पहुंच सकेंगे और कोई बाधा उनकी इस इच्छा को नहीं दबा सकेंगी। वे जज बन सकेंगे, ग्रांडज्यूरी और साम्राज्ञी के शांति कमीशन के सदस्य बन सकेंगे। और ऐसा सिर्फ शिक्षा के द्वारा ही किया जा सकता है क्योंकि शिक्षा ही ऐसा माध्यम है जो जाति के बंधनों पर खुला प्रहार कर सकती है। इसके साथ ही बाबा साहेब ने माउफंट एलफिंस्टन के उन विचारों का भी समर्थन किया जिसमें उन्होंने निम्न जाति के छात्रों को सर्वोत्तम माना परन्तु साथ ही यह विचार भी रखा कि किस प्रकार इस जाति के लोगों को कोई विशेष प्रोत्साहन प्रदान किया जा सकता है। इस प्रकार इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि 1855 तक प्रेसिडेंसी में दलित जातियों के लिए स्कूल नहीं खोले गए जो कि अंग्रेजी सरकार की सोची समझी नीति थी कि शिक्षा की सुविधा उच्च जातियों के गरीबों विशेष रूप से ब्राह्मणों तक ही सीमित रखी जाएं। और बताया कि शिक्षा बोर्ड की रिपोर्ट में अनेक ऐसे प्रावधान हैं जो शिक्षा की व्यवस्था का लाभ केवल अन्य वर्ग तक सीमित करते हैं।

बाबा साहेब ने 1854 से 1882 तक पिछले 28 वर्षों के दौरान शिक्षा से संबंधित आंकड़ों का हवाला देते हुए बताया कि हालांकि सरकार की नीति जन–शिक्षा की थी परन्तु आम आदमी के लिए शिक्षा उतनी ही दुर्लभ थी जितनी

[1] वही, पृ. 131

1854 से पहले और हिन्दुओं की निम्नतम तथा आदिम जातियां अभी भी शिक्षा के क्षेत्रा में सबसे पिछड़े थीं। यहां तक कि 1881 से 1882 में भी बंबई प्रेसडेंसी में इन समुदायों का एक भी छात्रा कालिजों अथवा हाई स्कूलों में नहीं पढ़ता था। यह सच था कि 1854 के पत्रा ने देश में जन शिक्षा की नींव डाली और इसी नीति के परिणामस्वरूप 1882 में भारतीय शिक्षा संबंधी हंटर आयोग ने पहली बार विचार किया। परन्तु वास्तविकता में जन शिक्षा व्यवहार रूप में दलित जातियों को छोड़कर शेष सभी को उपलब्ध थीं। शिक्षा का भार जिला समितियों पर छोड़ दिया गया कि वे हर मामलेमें स्थानीय लोगों की भावनाओं को देखते हुए छोटी जातियों के छात्राों को प्रवेश दें या ना दें। परिणामस्वरूप शिक्षा से दलित जातियां उपेक्षित रह गई क्योंकि उच्च जातियां उन्हें विद्या मंदिरों में घुसने नहीं देगी, जिनकी स्थापना सरकार ने अपने समस्त प्रजाजनों के लिए की थीं। 1854 में दलित जातियों की शिक्षा पर से प्रतिबंध हटाया गया जो केवल नाममात्रा का प्रयास था। भले ही बहिष्कार न करने के सि(ांत की पुष्टि सरकार ने कर दी थीं पर व्यवहार में बड़ी सपफाई से उसकी अनदेखी की गई। दलितों को शिक्षित करने का जिम्मा सिपर्फ ईसाई मिशनरी ले सकती थीं किन्तु सरकार धर्मिक तटस्थता पर कृत संकल्प थीं और मिशनरी स्कूलों को सहायता नहीं दे सकती थीं।

1923 में जनसंख्या के आधर पर जो आंकड़े प्रस्तुत किए गए उसके आधर पर यह आसानी से कहा जा सकता था कि शिक्षा की दृष्टि से जातियों के आधर पर तुलनात्मक रूप से भारी असमानता हैं। दलित वर्ग जो आबादी की दृष्टि से दूसरे स्थान पर है वह प्राथमिक शिक्षा की दृष्टि से शिक्षा के सबसे अंतिम

पायदान पर था ओर यही क्रम कमोबेश माध्यमिक व कॉलेज शिक्षा स्तर पर था। जबकि उन्नत हिंदू जो आबादी की दृष्टि से चौथे स्थान पर था उन्हें न केवल प्राथमिक शिक्षा अपितु माध्यमिक व कॉलेज शिक्षा स्तर पर प्रथम स्थान प्राप्त था। जिसके आधर पर कहा जा सकता है कि दलित वर्गों के लिए शिक्षा कितनी दूर थी। हालांकि आयोग ने शिक्षा से संबंध्ति अनेकों सिपफारिशें की थी परन्तु यदि हम पिछड़ी जातियों के हितों में आयोग द्वारा की गई सिपफारिशों का विश्लेषण करते हैं तो वे ऐसी कोई सिपफारिश नहीं करती कि पिछड़ी जातियों की शिक्षा को सरकारी कोष पर वैध प्रभार माना जाए, छात्रावृत्तियां उनके लिए आरक्षित की जाएं, उनकी शिक्षा संबंधी आवश्यकताओं की देखरेख के लिए विशेष निरीक्षक रखे जाएं अथवा उनमें शिक्षा के प्रसार से बढ़ावा देने के लिए सार्वजनिक संरक्षण प्रदान किया जाएं।

दलित जातियों की शिक्षा की किस प्रकार उपेक्षा की गई इसका एक उदाहरण दिल्ली में भारत सरकार के शिक्षा विभाग के 21 पफरवरी 1913 के संकल्प का लिया जा सकता है जिसमें निर्णय लिया गया कि प्रांतों में शिक्षा की व्यापक प्रणालियों के विकास के लिए ध्न उपलब्ध होने पर सरकारी खजाने से भारी अनुदान देकर स्थानीय प्रशासनों की मदद की जाएं। परन्तु पूरे संकल्प में कहीं भी पिछड़ी जातियों का कोई उल्लेख नहीं था।

शिक्षा सुधर कानून 1921 से लागू हुआ जिसमें शिक्षा को एक मंत्री के अधीन हस्तांतरित कर दिया गया। लेकिन इस सुधर से भी दलित जातियों को कोई लाभ नहीं मिला अपितु पिछड़ी जातियों की स्थिति बद से बदतर हो गई। क्योंकि न तो इसे अनिवार्य बनाने के लिए कोई दायित्व डाला गया और न ही इस दायित्व

की पूर्ति के लिए कोई समय सीमा निर्धरित की गई। इसके अलावा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा अधिनियम ने प्राथमिक शिक्षा पर नियंत्राण के लिए प्रशासनिक तंत्रा में अनाप–शनाप परिवर्तन कर दिए। पहले प्राथमिक शिक्षा का नियंत्राण तथा प्रबंध्न

प्रांतीय सरकार का होता था और इसका सारा खर्च प्रांतीय राजस्व से मिलता था। लेकिन इस अधिनियम से स्थिति एकदम बदल गई। अब स्कूलों का नियंत्राण और प्रबंध्न जिला स्कूल बोर्डों को सौंप दिया गया और बजाए इसके कि स्थानीय बोर्ड

प्रांतीय सरकार को अनुदान राशि दे उल्टा प्रांतीय सरकार से ही उपेक्षा की गई कि परिणामस्वरूप इस अधिनियम वह जिला स्कूल बोर्डों को अनुदान दें। ने स्कूल बोर्डों को अपना निजी कार्यकारी अध्किारी नियुक्त करने का अध्किार दे दिया। इस प्रकार का हस्तांतरण सामान्य रूप से शिक्षा की प्रगति में बाध्क है तो यह विशेष रूप से दलितों के लिए अध्कि हानिकारक साबित हुआ। क्योंकि एक आम धरणा है कि आम आदमी शिक्षा में विश्वास रखता है या नहीं परन्तु वह पिछड़े वर्गों को शिक्षित बनाने में विश्वास नहीं रखता। उफंची जातियों का रवैया निम्न जाति के लोगों की शिक्षा को लेकर क्या था? उसका पता हंटर आयोग के इस वक्तव्य से पता चलता है जो इस प्रकार है ‘‘अनेक गवाहों ने बयान दिया है छोटी जातियों के बालकों को स्कूलों में दाखिला दिए जाने का स्पष्ट विरोध किया है। मध्य प्रांत व बंबई के कुछ भागों में ग्रामीण समुदाय ने छोटी जातियों की शिक्षा पर विशेष आपत्तियां इस आधर पर उठाई कि शिक्षा से उनका जीवन उन्नत हो जाऐगा तथा उन्हें वर्तमान दासता भरे जीवन से मुक्ति पाने की प्रेरणा मिलेगी। अतः ग्रामीण समुदायों का ऐसा व्यवहार हो तो कैसे आशा की जा सकती थी ऐसे स्कूल

बोर्ड जिसमें अधिकांश ग्रामीण समुदायों के लोग होंगे, किस प्रकार दलित जातियों की शिक्षा के मामले में अपने कर्तव्य का निष्ठा से पालन करेंगे। अतः शिक्षा का नियंत्राण स्कूल बोर्डों के हाथ में देने से वहीं स्थिति होगी जैसे अभियोक्ता को शासक बना दिया जाएं।''[6]

अतः दलितों की शिक्षा के विकास से संबंधित ये चार चरण रहे जहां बाबा साहेब ने दलितों की शिक्षा से संबंधित अनेक प्रश्नों व दलितों की शैक्षिक स्थिति पर ध्यान देते हुए सरकार के समक्ष इन्हें रखा। आगे के भाग में शिक्षा से संबंधित बाबा साहेब के सुझावों की चर्चा की गई हैं।

बाबा साहेब ने 1928 से आगे की शिक्षा के सन्दर्भ में सदन को अनेक उपाय बताए जैसे स्कूलों में बोर्ड के हस्तक्षेप की रोक होनी चाहिए जिस से दलितों की शिक्षा को बाध्य करने पर रोक कम होगी। प्राथमिक शिक्षा को बाध्यकारी बनाया जाए तथा दाखिले के नियम का कड़ाई से पालन किया जाए ताकि दलितों के लिए शैक्षिक प्रगति की आवश्यक परिस्थितियां उत्पन्न की जा सके। हंटर आयोग ने जो सिपफारिशें मुस्लिमों की शिक्षा के लिए दी है वे दलित जातियों की शैक्षिक प्रगति के लिए भी लागू की जाएं तथा दलितों को शिक्षा की तरपफ लाने के लिए उन्हें सरकारी नौकरी में लाया जाए। साथ ही उन्होंने छात्रावृति, हास्टलों का निर्माण तथा दलितों की शिक्षा के लिए रियायतों पर भी विचार किया। बाबा साहेब ने बॉम्बे लेजिस्लेटिव में शिक्षा के अनुदान के मसले पर कहा कि 'मुसलमानों की शिक्षा के प्रयत्नों के अनुसार ही दलितों की शिक्षा की देखभाल के लिए विशेष

वहीं, पृ. 144–145

निरीक्षक वर्ग की आवश्यकता है, दलित छात्राों के लिए बजट में अलग से छात्रावृति के लिए ध्न दिया जाए तथा दलित बच्चों को छात्रावृति देने की प(ति पर विचार किया जाए। बाबा साहेब ने दलितों की शिक्षा के लिए अनुदान देने के संबंध में कहा कि दलित जातियों के लड़कों को छात्रावृति देने की प(ति पर भली भांति विचार किया जाना चाहिए। सहायता के रूप में छात्रावृत्ति किसी भी प्रकार की सहायता न होने से बेहतर है, पिफर भी मेरे अनुभव बताते हैं कि छात्रावृत्ति देने की जो प(ति है, वह वास्तव में सरकारी ध्न की बर्बादी है। दलित वर्ग के बच्चों के माता–पिता इतने गरीब व अनभिज्ञ है कि वे यह समझ ही नहीं पाते कि सरकार द्वारा दी गई सहायता वास्तव में उनके बच्चों को शिक्षित बनाने के लिए हैं। वे छात्रावृत्ति को अपने खर्च को पूरा करने वाली सहायता के रूप में लेते हैं। एक प्रकार से यह छात्रावृत्ति बच्चे की शिक्षा के काम नहीं आती जो इसका प्रथम उद्देश्य है। छात्रावृत्ति से लड़का अपने लक्ष्य तक कभी भी नहीं पहुंच सकता क्योंकि दलित वर्ग का लड़का बुरे माहौल में पलता है। वह ऐसी परिस्थितियों में पलता है जो किसी भी तरह से वांछनीय नहीं है। जब किसी लड़के को छात्रावृत्ति मिल जाती है तो वह अनेक प्रकार के बुरे प्रभावों का शिकार हो जाता है। उचित दिशा–निर्देशन के अभाव में उसे पढ़ाई छोड़ देनी पड़ती है और इस प्रकार उस पर खच होने वाला ध्न बेकार हो जाता है। इसीलिए बेहतर है कि इस ध्न का उपयोग छात्राावासों की अभिवृ(में किया जाए, जिसे या तो सरकार खुद बनाए–चलाए या यह काम पिछड़ी जातियों की शिक्षा को बढ़ावा देने वाली निजी संस्था करें। इससे दोहरी बचत होगी। पहला छात्राावास लड़कों को गंदे माहौल से

दूर रखेगा, उसे प्रभावी निरीक्षण उपलब्ध होगा तथा दूसरा इससे सरकार धन की कुछ बचत होगी।[7]

अम्बेडकर ने दलितों को दी जाने वाली सरकारी सहायताओं के विषय में जो टिप्पणी की आज से लगभग 99वें वर्ष पूर्व की थी वही स्थिति आज भी विद्यमान हैं। दलितों के लिये सरकारी योजनाओं का लाभ तथा उनका क्रियान्वयन बहुत ही लचर है जिससे यह योजनाएं आजादी के बाद से अब तक भी दलितों को मदद देने में लाचार है। दलितों को दी जाने वाली सरकारी सुविधओं तथा आरक्षण का लाभ उनको मुख्य धरा में जोड़ पाने में असपफल ही रहा है। इस सम्बन्ध में सामाजिक न्याय की अवधरणा की परिस्थितियों में रखकर किए जाने वाला यह सरकारी उपचार दलित को उनकी ही परिधि में रखने के लिये मजबूर करता है। 1991 की आर्थिक नीति और नीजिकरण का तेज रफ्तार ने भी दलितों को खाली–हाथ ही रखा है। सेवा क्षेत्रा और कृषि क्षेत्रा में तेजी से होने वाले बदलावों ने दलितों को और उनके मुख्य धरा में शामिल होने के कदमों को नीजिकरण ने प्रभावित किया है।

जाति तथा अस्पृश्यता पर आधरित आर्थिक भेदभाव की गहराई को देखते हुये भारतीय राज्य ने सार्थक हस्तक्षेप की नीतियाँ अपनाईं। इन आर्थिक भेदभावों का सर्वाध्कि शिकार नीची जातियों का 'अछूत' तबका होता है।

इस संदर्भ में भेदभाव–विरोधी सार्थक हस्तक्षेप की नीति तथा अन्य समाधनकारी उपायों के दो पहलुओं को साथ–साथ समझ लेना जरूरी है। ये दो

[7] सम्पूर्ण वाघ्मय खण्ड–3, पृ. 61

पक्ष है ;1द्ध उस आर्थिक क्षेत्रा अथवा बाजार का स्वरूप जिसके लिए भेदभाव विरोधी सार्थक हस्तक्षेप के उपाय अपनाये जा रहे हैं, तथा ;2द्ध इन उपायों को निजी अथवा सरकारी क्षेत्रा में अमल में लाने के लिए अपनाई गई प(ति या प्रशासनिक कार्यविधि।

इसलिए यहां सार्थक हस्तक्षेप की नीति का मुख्य क्षेत्रा श्रम बाजार है और मसलन नीति निजी तथा सार्वजनिक दोनों ही क्षेत्राों में लागू है। कुछ देशों न संयुक्त राज्य अमेरिका में सार्थक हस्तक्षेप की नीति के दायरे में शिक्षा, आवास तथा अल्पसंख्यकों के व्यवसाय से सामान की सरकारी खरीदारी और इस वर्ग के लिए सरकारी निविदा की व्यवस्था जैसी बातें भी शामिल है।

सार्थक हस्तक्षेप की नीति बुनियादी सामाजिक जरूरतों मसलन शिक्षा तथा आवास के क्षेत्रा में लागू हैं इस प्रकार अगर वृहत्तर कार्यों में देखे तो इन देशों में बहुत से आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्रा भेदभाव विरोधी सार्थक हस्तक्षेप की नीति के दायरे में है। इस नीति के दायरे में श्रम, कृषि, पूंजी, उत्पाद तथा उपभोक्ता वस्तुओं के बाजार के साथ–साथ शिक्षा तथा आवास जैसी सामाजिक वस्तुओं सोशल गुड के लेनदेन शामिल हैं।

रोजगार, शिक्षा जगत अथवा सरकारी ठेका तथा अन्य क्षेत्राों में वंचित वर्ग की भागीदारी 'न्यायोचित' है या नहीं इसको जांचने के लिए इन देशों में अलग–अलग सि(ांत अथवा प(ति अपनाई गई है।

सार्थक हस्तक्षेप की नीति को भेदभाव विरोधी अन्य उपायों में लगाया जा सकता है। इसमें वंचित वर्ग के पक्ष में सक्रिय कदम उठाये जाते हैं इसी कारण

इसे सार्थक हस्तक्षेप की नीति कहा गया है। यह कार्यनीति भेदभाव के शिकार वर्ग की रोजगार, शिक्षा और आवास आदि क्षेत्रों में भागीदारी सुनिश्चित करने के लिए अपनाई जाती हैं। यह कार्यनीति भेदभाव–विरोधी अन्य नीतियों से भिन्न हैं।

तीसरी रणनीति 'मुआवजा' प्रदान करने की है।

इन उपायों की अपनी सीमाएं हैं अतीत में लंबी अवधि तक किसी समुदाय के साथ जो भेदभाव अथवा उपवर्जन का व्यवहार किया गया उसे ये नीति दूर नहीं कर सकती। संयुक्त राज्य अमेरिका के संदर्भ में डेरिटी का कहना है कि सार्थक

हस्तक्षेप की नीति अतीत में किए गए अन्याय के लिए मुआवजा नहीं दिला पाती। न ही इस नीति से ध्न संपदा की मौजूदा असमानता को दूर किया जा सकता है। सार्थक हस्तक्षेप की नीति से बावस्ता कार्यक्रम वर्तमान भेदभाव की समस्या से निपटने के लिए बनाए गए हैं। दूसरी तरपफ मुआवजा देने की रणनीति अतीत में संपति के अध्किार अथवा अन्य अध्किारों से वंचित रखने तथा इस कारण किसी वर्ग को घनघोर गरीबी में डालने के अन्याय की पहचान करने की सूरत में अपनाई जाती है, मुआवजा देने की बात का औचित्य तीन बिन्दुओं से सि(किया जाता हैः

;1द्ध गुलामी करने की एवज में दिया जाने वाला मुआवजा, ;2द्ध भेदभाव तथा अपवर्जन के बरताव की एवज में दिया जाने वाला मुआवजा, ;3द्ध पूंजी परिसंपति के स्वामित्व में भारी अंतर अथवा ध्न सम्पदा के मामले में भारी असामानता की एवज में दिया जाने वाला मुआवजा।

अतीत में किए गए अन्याय तथा उसके परिणामस्वरूप उत्पन्न संसाध्नहीनता का मुआवजा दिलाने की रणनीति अख्तियार की गई।

रोजगार के समान अवसर से संबंधित कानून, सार्थक हस्तक्षेप की नीति का मुआवजा। इस विकल्पों में से कुछ अथवा सबको, 'नीची जाति' के 'अछूतों' को भारत में निजी क्षेत्रा में जारी आर्थिक भेदभाव से छुटकारा दिलाने के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है परन्तु यह इस बात से निर्धारित होगा कि यहां आर्थिक भेदभाव का स्वरूप क्या है।

इन विकल्पों का उपयोग समग्रता में होना चाहिए– आंशिक रूप से न्याय का अर्थ होता है बराबर का व्यवहार और बराबर का दर्जा।

जो अवसर या सुविधि आप अपने लिये चाहते हैं वहीं दूसरों के लिये भी दें, यही न्याय है। इस परिप्रेक्ष्य में यदि यह समझें तो सामाजिक न्याय 'दूसरों के अधिकार न मारे जाए, दूसरे के अवसर न मारे जाए और उसका लाभ मिले' है।

समाज में अन्याय की उपस्थिति ही न्याय की मांग करती है और मांग करने वाला और कोई नहीं बल्कि वह होता है जो न्याय से वंचित हुआ है। यही कारण है कि भेदभाव होते हैं। जैसा कि मैंने पूर्व के विमर्श में संवाद किया है कि न्याय की यह अवधरणा ध्र्म से जोड़कर देखी जाती है। जिसे ब्राह्मणवादी विचारधरा बनाए रखने में मदद करती है। यदि हम कौटिल्य या पिफर मनु की व्यवस्था को देखें तो हम पाएंगे कि एक अपराध के लिए जो दंड एक शूद्र के लिये तय है, वही दंड एक ब्राह्मण के लिए नहीं है। पिफर, शूद्रों को शिक्षा नहीं दी जानी चाहिए, और सबसे बड़ी बात यह है कि उसको सामाजिक सम्मान नहीं दिया जाना चाहिए। सामाजिक न्याय है। जब एक तो इन चीजों की मांग ही दलित शिक्षा, अवसर, सुविधि और सम्मान मांगता है, तो अन्याय के विरू(लड़ाई शुरू होती है।

सामाजिक न्याय के इस बंटवारे में ही संवैधनिक रूप से साक्षात्कार भेदभाव की व्यवस्था के रूप में संविधन रक्षोपाय किए गए हैं। कहीं–कहीं यह उपचारात्मक भेदभाव है तो कई बार इसे सकारात्मक भेदभाव तथा 'क्षतिपूर्ति की नीति भी कहा जाता है। संविधन में इन्हें वर्णित किया गया है। परन्तु दलितों के लिये किए गए यह उपलब्ध भी स्वतंत्रा भारत में दलितों की सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक परिस्थिति में कोई बड़ा बदलाव नहीं कर पाए हैं। इसका कारण है नीतियों का कार्यान्यवयन और दलितों की उपेक्षा। ''क्षति पूर्ति भेदभाव की नीति को केवल अपने साध्क गुणों के लिये ही नहीं लाना चाहिए, यह वर्तमान भी है, इसके द्वारा भारतीय अपने आप को बता सकते हैं कि वो किस प्रकार के लोग हैं तथा यह किस प्रकार का राष्ट्र है''[8]

बेते का मानना है कि संरक्षणात्मक भेदभाव की नीति को वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति करना चाहिए। यह पुरानी चोटों को ठीक करने में कुछ नहीं कर सकती। यद्यपि हमें वर्षों पुरानी असमान ताकतों को ध्यान में रखना चाहिए परन्तु ऐसा न हो कि पुरानी असमानताओं को जन्म दे दे ;क्योंकि भेदभाव हमेशा खतरनाक होता हैद्ध लेखक ने अपने व्याख्यानों में इन दो बातों पर भी व्यापक विचार किया है–

;1द्ध व्यक्ति तथा समूह में अंतर, तथा ;2द्ध योग्यता व आवश्यकता में अन्तर परन्तु इसने हर जाति व समुदाय के अन्दर व्यक्तियों के बीच अंतर को बढ़ाया है। यह विचार करते हुए कहते है कि 'बटाई न्याय' के नाम पर दी जाने

गेलेन्टर, कम्पिटिंग इक्वेलिटी लॉ एंड बैकवर्ड क्लासिस ईन इंडिया

वाली सुविधएं, नीति अधिकार व न्याय के रूप में देखी जाती है जिसके कारण जातीय चेतना खत्म होने के बजाय बढ़ रही हैं क्योंकि जरूरी नहीं है कि एक के लिए आवश्यक वस्तु आप के लिए भी जरूरी हो। इस प्रकार बेते इन्हीं के शब्दों संरक्षात्मक भेदभाव की नीति को व्यक्ति व समूह तथा योग्यता व आवश्यकता के अंतर को गहराई से दर्शाते हैं।

बाबा साहेब यह मानते थे कि दलितों को मानसिक उदासीनता व अपने शोषण में ही संतुष्टि से जगाने के लिए शिक्षा बहुत जरूरी है। इसी उद्देश्य से उन्होंने 1924 में 'बहिष्कृत हितकारिणी सभा' का गठन किया। उन्होंने दलितों को शिक्षित होने का आह्वान किया। अपने प्रेरणा एवं शिक्षाप्रद संदेश में उन्होंने कहा, ''शिक्षित बनो, संगठित रहो, संघर्ष करो' तभी सफलता मिलेगी। आम्बेडकर स्पष्ट रूप से स्वीकार करते थे कि शिक्षा के द्वारा ही दलित अपना उ(ार कर सकते हैं शिक्षा से ही उन्हें अपने शोषण का ज्ञान होगा। इसलिए उन्होंने स्वयं हॉस्टल, स्कूल व कॉलेज बनवाएं तथा सरकार से शिक्षा के लिए विशेष सुविधओं तथा स्कूल कॉलेजों में इनके लिए आरक्षण की मांग की।

संदर्भ सूची:–

1. सम्पूर्ण वाघमय, खण्ड–3, 2013, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
2. सम्पूर्ण वाघमय, खण्ड–4, 2013, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
3. सम्पूर्ण वाघमय, खण्ड–6, 2013, सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
4. गलेन्टर, 1994, कम्पिटिंग इक्वेलिटि लॉ एंड बैकवर्ड क्लासिस ईन इंडिया, आक्सपफोर्ड यूनिवसिर्टी प्रैस–नई दिल्ली